"तीर्थ-दर्शन-स्नान"

"कोट तीरथ मंजन इसनाना - इस कल मह मैल भरीजै ।
साध संग जो हर "गुण" गावे - सो निरमल कर लीजै ।" (5-747)

ऐसे हालात इस घोर "कल" में बन चुके हैं । कि यदि प्रचार कर दिया जाये कि गंगा स्नान से मुक्ति मिलती है तो यकीन जानिये

सभी गंगा किनारे ही मिलेगें । कुर्बान होना तो दूर कोई "उस" (ईश) का नाम लेने वाला भी न मिलेगा ! स्पष्ट है कि इतना (गहरा) माया नें भ्रम का परदा डाल रखा है जीव पर कि विचार शक्ति ही नहीं रही । मुक्ति केवल "ईश" पर आधारित उसी की "कृपा" से ही केवल संभव है । पर यकीन बना हुआ है कि गंगा में डुबकी लगाते ही मुक्ति रूपी माला गले में पड़ जायेगी । कोई देखने वाला ही नहीं है कि कितनों को जीते जी ही अपनी "हवस" रूपी अग्नि में जिंदा ही जलने को मजबूर किया है और आगे भी अभी और सिलसिला इसी रंग का निरन्तर लागू ही रहेगा । ये सभी "तुच्छ" करतूतें पानी से ही "केवल" धुल कर गंगा में ही हवा हो जायेंगी । ये सभी "तुच्छ" ही तारीफ के काबिल हैं तो फिर आप क्या कल्पना कर सकते हैं कि "महान करतूतें" क्या होंगी ? पर सभी को "दलालों" ने बड़ा सुन्दर तथा सरल उपाय "दिव्य दृष्टि" से देख कर निकाला है । अब इस सारी "पोप लीला" के पीछे क्या चक्कर है थोड़ा विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इन विशेष स्थानों पर कुछ रूहों नें उस "ईश" से मिलने का परमार्थ रूपी यज्ञ सम्पन्न किया, किसी समय विशेष में । अब शब्द-नाम (ईश) की महत्ता जब प्रगट होती है तो "जुवान सिद्धों" इत्यादि जो शब्द का ही विकृत स्वरूप है अपने आप स्वाभाविक रूप से कार्य करती है । तथा कुछ विशेष कारणों से कुछ विशेष क्रिया

को तीनों मण्डलों के दायरों में ही केवल सिद्ध किया जाता है । फिर जब तक "तप" का प्रभाव रहता है ये सिद्धियां भी थोड़ा अधिक कार्य अवश्य करती ही रहती हैं । तथा तप के क्षीण होते ही सब कुछ पहले जैसा ही हो जाता है । फिर कलान्तर में तो इसका स्वरूप इतना घिनौना हो जाता है कि उस को व्यक्त करने की क्षमता इन शब्दों में ही नहीं है यानी के जो भुगतते हैं वे ही अनुभव कर सकते हैं ब्यान करने की क्षमता उन में भी नहीं रहती । इसी बीते समय की कुछ टूटी कड़ियों को जोड़ कर बड़ी लुभावनी मन को मोह लेने वाली "साखियां" प्रचारित कर दी जाती हैं इन "दलालों" द्वारा तथा अपनी "हवस" को पूरा करने के लिये ये सभी "तीर्थ स्थान" एक इन्सान को बलि देने रूपी "यज्ञषाला" बना दिये जाते हैं । विचार करिये जड़ में "ईश" से मिलने के लिये जिस रूह नें अपना "सर्वस्व होम" किया उसे आप केवल "तीर्थ- दर्शन -स्नान" करके ही प्राप्त कर लेंगे ! कितनी आश्चर्य की पोप लीला है । इसके जिम्मेदार भी एक तरह से हम स्वंय ही हैं । कारण सारे कार्यों के लिये हमारे पास "दिव्य दृष्टि" अर्थात भरपूर विचार-विवेक शक्ति सदा अखुट भण्डार के रूप में विद्यमान रहती है । पर "रूह के कल्याण" के लिये न समय-न धन और न ही विवेकता का कण मात्र ही उपलब्ध है यानी कि पूर्ण रूप से "दिवालिया" ही घोषित कर दिये गये हैं । भाई साहब

फिर ऐसी "महान दरिद्री" में दलालों की क्यों न पौ-बारह हो । जब हम स्वंय ही अपना नाश करवाने को तैयार है सदा ही तो फिर नाश करने वालों की कोई कमी थोड़ी है इस भवसागर में । ये सभी प्रकार के स्थान ब्रह्म (मास्टर घसीटा राम जी) की सिद्धियों द्वारा "निर्देशित" एक ऐसा "भयानक जाल" है कि एक बार इस चक्कर में आने के बाद फिर जीव की विवेकता पूर्ण रूप से "हर" ली जाती है और जीव अपना "सर्वस्व" खो कर के फिर कैसे इस "जाल" में से निकलने की भी कल्पना कर सकता है । तथा पीढ़ी दर पीढ़ी कुलें की कुलें अपना "सर्वस्व बलिदान" करती हुई "नरकों" को देखने का अपना अधिकार ही केवल सुरक्षित करती रहती हैं । बुद्धि का ऐसा नाश होता है कि जीव न चाहता हुआ भी केवल यहाँ से "संसार" ही माँगता है । बस एक संसार रूपी "विश" आप चाट लें शेष सभी विश तो "मुफ्त उपहार" के रूप में अपने आप ही आपके घर (मुँह) में जबरदस्ती आ ही जायेंगे । फिर यह सिलसिला कब खत्म होगा इसका तो कोई महान ऋषि भी "अनुमान" ही न कर सके अर्थात कभी भी इन दुखों (जन्म मरण) का तो अन्त होगा ही नहीं । "अंतर मैल जे तीरथ नावे - तिस बैकुंठ न जाना । लोक पतीणे - कछू न होवे - नाही राम अयाना । जल के मंजन जे गत होवे - नित-नित मेंढक नावह । जैसे मेंढक - तैसे ओई नर - फिर-फिर जोनि आवह ।" (484-कबीर) पर इसका तो जन्म-मरण अवश्य ही कट

जायेगा बिना हिसाब दिये ही (सभी अनन्त जन्मों के पाप हवा ही हो जायेगें, यानी कुछ किया ही नहीं) ऐसा दृढ़ निश्चय अर्थात यकीन जीव ने निश्चित रूप से मान ही रखा है "केवल"। इन सभी स्थान विशेषों पर जो "शब्द" का प्रभाव है अणु-परमाणु का "आधार स्तम्भ" (उन्हें क्रियाशील बनाने वाला) प्रबल रूप से सम्पर्क में आने वाले जीवों के अणुओं को प्रभावित अवश्य करता है "सतो गुणी" रूप में। (जिससे जीव कुछ राहत अथवा शान्ति का अनुभव करता है)। तथा उसे स्वाभाविक रूप से अपने मूल (ईश) की ओर खिंचाव होता है। पर विवेक की कमी के कारण वह इसकी "खोज" न कर अनुभव से भी रहित ही रहता है। यहाँ भी जिन जीवों की "तमों गुण" की प्रधानता रहती है उन्हें तो सतों गुण के अभाव अथवा क्षीण होने के कारण इसका "एहसास" नहीं होता। यदि जीव इस मिली "सात्विक प्रेरणा" को ग्रहण कर "अनुसन्धान" करें (ठीक जगह पर) तो अवश्य ही उसे लाभ की प्राप्ति होती है। पर जीव तो इस "विषय" (आत्मिक कल्याण) पर ऐसा "मोटा पर्दा" डाल कर बैठा है कि कुछ कहना सुनना पसन्द ही नहीं करता। अर्थात "अन्धा" ही बना हुआ है। "आँख मीच मग सूझ न जाई। ताहि अनन्त मिले किम भाई।" यानी बिना मेहनत तो कुछ प्राप्त ही नहीं हो सकता अर्थात जीव की अपनी मेहनत ही कारगार साबित होती है वो भी यदि उसकी

"कृपा" साथ हो तभी । इसकी एक दूसरी जमात (श्रेणी) और बन गई है हजूर, महाराजा, दाता, साई जी, बाबा जी, संत, गुरू इत्यादि नामों से जाने वाले व्यक्ति विशेष केवल अपने "दर्शन" दे कर के ही मुक्ति मुफ्त में बांट रहें हैं ! यदि कहीं ज्यादा जोर मारते हैं तो भाई इनके सुन्दर महान वचनों को सृवण कर लो बस दर्शन के लिये जाने की जरूरत नहीं है बस घर में ही गद्दे के अंदर घुसे टेप वीडियो आदि लगा देख-सुन लो, पर शर्त है आँख बंद करके देखना है और खर्राटे भर के सुनना है (प्रत्यक्ष रूप में भी) ये सुविधा पूर्ण रूप से इनके यहाँ से उपलब्ध है ! भाई है न कमाल का "रिमोट सिस्टम"। रिमोट में तो बटन को दबाने का कष्ट उठाना ही पड़ता है पर यहाँ तो इस कष्ट को भी उठाने की कल्पना में भी जरूरत ही नहीं, मुक्ति अपने आप ही आप के गले का हार बन कर के ऐसी चिपकेगी कि आप उतारना भी चाहें तो वो आप को छोड़ कभी न जायेगी । यह "मुफ्त उपहार" तो आप को ग्रहण "अवश्य" करना ही पड़ेगा। कमाल तो इनके रोम-रोम में खुदा ही पड़ा है दृश्टि में तो (विशेष) कमाल ही है कि जिस पर पड़ जाये मुक्त ही समझिएगा ! फिर विश को अमृत बना देना कोनों बड़ी बात है भाई । संसार को विश अभी ऊपर बता आये हैं फिर पता नहीं इन "राजाओं" का क्या अहित सुपने में हम से बन पड़ा है कि अभी तक यह (संसार) अमृत नहीं बन सका । या तो ये

संसार में आँख बंद करके विचरण करते हैं या फिर कोई मोटा काला पर्दा (मोतिया बिन्द) इनकी आँखों के आगे रहता है । और क्या कारण हो सकता है इस विश के अमृत न होने का ? इनकी क्षमता में तो कोई कमी कल्पना में भी नहीं क्योंकि ये तो खुद ही खुदा ही हैं । कमी तो संसार में ही है कि बेचारा इनकी "अमृत" भरी दृश्टि को प्राप्त ही न कर पाया अभी तक । वर्ना अमृत बनाने में तो वे कोई देर कल्पना में भी "बर्दाश्त" नहीं करते । "सतिगुर नो सभ को वेखदा - जेता जगत संसार । डिठे मुकत न होवई जिचर - सबद न करे वीचार ।" (3-594) इन भावों को विचारने की किसे फुर्सत है फिर यह तो एक ऐसी गंगा है जो खुद चल कर आपके घर में प्रवेश कर जाती है ! और आप दर्शन-स्नान करके मुक्ति को गले का हार बना सकते हैं ! असल गंगा से तो भाई साहब आप ऐसी सुविधा की कल्पना भी नहीं कर सकते । भाई जी जरा विचारिये आप ने (तो केवल) बंदे (ही) इकट्ठे करने हैं चाहे जंगल में ही कर लो हमने तो (गंगा ने) सत्संग नाम की चपेड़ ( ) ही मारनी है । मुक्ति खुद ब खुद आ करके आपके गले का हार बन जायेगी है न चमत्कार ! फिर भी सभी काल की दाड़ के नीचे आखिरी गिनती गिन रहे हैं और जब चाहेगा (काल) वहीं भींच देगा चूं भी नहीं कर पायेगी तथा संसार तो पहले से ही "भयानक हलाहल विश" बना आत्मा को निगलता ही (चला) जा

रहा है । पर सभी अपने को मुक्त समझे निश्चित हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं । तो क्या इस गंगा से कुछ भी लाभ नहीं होता ? जैसे असल गंगा के स्नान से शरीर की मैल अवश्य धुलती है । मुक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं वैसे ही इस "चेतन" गंगा से केवल मार्ग का दर्शन होता है वो भी तभी यदि ये चलती फिरती गंगा खुद "पवित्र" हो चुकी हो तभी । वर्ना इसमें दर्शन-स्नान से तो शरीर की भी "मैल" नहीं उतरती और जीव इन से निकलने वाले "तामस्कि अणुओं" के प्रभाव से तो अपने पतन (नाश) को कल्पना में भी बचा न पायेगा ।

"पवित्र" हो चुकी चलती फिरती "चेतन" गंगा से भी वही "सात्विक प्रेरणा" गुप्त रूप से लगातार मिलती रहती है अर्थात जीव के अणुओं को प्रभावित करती रहती है फिर यही जीव "अनुसंधान" करने लग जाये "ठीक जगह" पर तो उसका कल्याण अवश्य ही संभव बना दिया जाता है । "सभ किछ घर महं - बाहर नाही । बाहर टोलै सो भ्रम भुलाई ।" पर जीव दाढ़ी-चोले-डेरे-तीर्थ-नाम-अमृत-स्थान विशेष इत्यादि महान पदार्थों में ही उस महान को तलाश करता है और उसे "जमों" के आगे अनन्त जन्मों से शर्मिंदा होना पड़ रहा है । यह केवल इसकी सियाणत मात्र ही है केवल । "मनमुख मुगध बूझे नाही - बाहर भालण जाई ।" केवल इतना ही इस गंगा विशेष से लाभ प्राप्त

किया जा सकता है । सारी परमार्थ का भेद इस वचन में निहित है "मर-मर जीवे ता किछ पाऐ - नानक नाम वखाणै ।" या तो यह वचन वाणी झूठी है या फिर इन महंतों (गद्दीधारी दलाल) द्वारा चलाये जा रहे मत-धर्म जो दर्शन-स्नान में मुक्ति दे रहे हैं झूठे हैं ! समय खुद ही इसका न्याय कर देता है जब यमों की शक्लें नजर आती हैं तो बिस्तर ही गंद से भरता है, अपने आप सभी कुछ ब्यान अथवा सिद्ध हो जाता है । "आप सवारह - मैं मिलह - में मिलिआ सुख होई । फरीदा जे तू मेरा होई - रहह सभ जग तेरा होई ।" (1379) "कल्याण" केवल स्वंय के "संवरने" में ही है और सिद्ध (संकल्प) किये जा रहा है दुनिया संवारने का वो भी केवल दृश्टि मार कर ! अब बताइये इन "दुर्लभ सिद्धों" का क्या इलाज है, यानी कुछ भी नहीं, प्रतिफल है बार-2 जीओ और मरो बस केवल मात्र । इसी प्रतिफल को सिर पर उठा जीव मनुष्य जैसे कीमती जन्म को केवल कूदता-फांदता दर्शन-स्नान इत्यादि "फोकट के कर्मों" में अपनी हस्ती को मिटाता चला जा रहा है अर्थात स्वंय ही अपनी बेड़ी में डूबने के वास्ते पापों की मैल एकत्रित करता चला जा रहा है ।